संगति

भाग – ५

'संगति' विषय का अध्ययन करने के लिए **'संगति' के अनेक पक्षों** का वर्णन तथा विस्तार सहित विचार करनी आवश्यक है —

१ 'संगति' के **'साधन'** या तरीके ।

२ 'संगति' की **'रंगत' या प्रभाव** ।

३ 'संगति' का प्रभाव लेने की **'ग्रहण शक्ति'**।

४ 'संगति' का **'रचनात्मक' आत्मिक पक्ष** ।

५ कुसंगति का **घातक मायिकी पक्ष** ।

६ संगति द्वारा उत्पन्न **भावना की तीव्रता** तथा **तीक्ष्णता** ।

७ संगति द्वारा **सम्पूर्ण जीवन परिवर्तन** ।

८ संगति की महानता तथा महत्ता ।

इन समस्त पक्षों पर इस श्रंखला के अगले भागों में विस्तार सहित विचार की जायेगी ।

'संगति' शब्द 'संज्ञा' (noun) व क्रिया (verb) दोनो रूपों में प्रयोग किया जाता है ।

जब **'संगति'** को संज्ञा के रूप में प्रयोग किया जाये, तब यह जीवों के **'समूह'** का प्रतीक है ।

जब **'संगति'** को क्रिया के रूप में प्रयोग किया जाये, तब इस का अर्थ है 'संग करना', 'परसना','मेल-मिलाप' करना ,'बात चीत' करनी, विचारों का 'आदान-प्रदान' करना,'लेन-देन' करना, वाणिज्य व्यापार करना, एक दूसरे पर असर डालना,'छुह' लगनी, या 'नदरि करमु' आदि ।

यह **'संगति'** कई प्रकार की हो सकती है —

१. **शारीरिक संगति —**

शारीरिक संगति द्वारा शक्ल-सूरत तथा बाहरी रूप (outward appearance)

से जान पहचान होती है। परन्तु यह जान-पहचान बाहरमुखी होने के कारण हम एक दूसरे के वास्तविक **'गुप्त व्यक्तित्व'** (personality) से अनजान रहते हैं तथा कई बार धोखा खा जाते हैं। इस प्रकार जीवों का परस्पर 'मेल जोल' या 'संगति' **ऊपरी सतह** (superfluous plane) पर ही होती है।

उदाहरणस्वरूप परिवार के कई सदस्य वर्षों तक निकटवर्ती होते हुए भी उनका परस्पर **'जिगरी मेल'** या **'संगति' नहीं होती** तथा वे अपरिचितों की भांति एक ही घर में सारी उम्र गुजार देते हैं।

इस का कारण यह है कि प्रत्येक मैंम्बर की मानसिक **'रंगत' अलग-अलग सतह** (different mental waive-length) पर होती है — इस लिए उनका 'मेल-मिलाप' या 'सम्बन्ध —

मैं-मेरी की प्रवृत्ति के लिए
शरीर के पालण-पोषण के लिए
जीवन के निर्वाह के लिए
स्वार्थों की पूर्ति के लिए
वाशनाओं की पूर्ति के लिए
'लोक लाज'
'रवानापूर्ती'
'संयोग के बंधन'

ही होते हैं जिसमें **तहदिल से मेल** या **मानसिक 'इक-सुरता'** नहीं होती। इसी कारण प्रत्येक परिवार में शक, भेदों का पर्दा, खींचतान, शिकायतें, रोष, शिकवे, झगड़े, लड़ाइयों **का बोलबाला है**।

ऐसा 'मेल-मिलाप' शरीर तक **सीमित** होता है, जिसे अपने-अपने **स्वार्थ के लिए प्रयोग किया जाता है**। वास्तव में ऐसा **'मेल-मिलाप' या 'संग' करना** बाहरी श्रृंगार, दिखलावा मात्र, स्वार्थ पूर्ती का ढंग, **'औपचारिकता'** पाखण्ड, **'गले पड़ा ढोल बजाना'**, **'समय काटना'** ही होता है। जो —

परिवारों में
रिश्तेदारों में
पड़ोसियों से
सभा-सुसाइटियों में

विद्यक स्थानों में
धार्मिक स्थानों में
फैक्ट्रियों में
सरकारी दफतरों में
विश्व संस्थाओं में
समुदायों में

सहज स्वभाव प्रकट रूप से प्रवृत्त है ।

हम इस **'दिखावार्पूण' व्यवहार में** इतने खचित व मस्त हैं कि हमें ऐसे **नाममात्र सम्बन्ध** या **'मेल मिलाप' के 'ढोंग'** या **'पाखण्ड' होने का अहसास ही नहीं होता** । अपितु हम इस 'ढोंग' या **'दिखलावपूर्ण बाह्य श्रृंगार** को ही **वास्तविक 'जीवन सम्बन्ध' अथवा 'संगति' माने हुए हैं** तथा इस से **ऊँची-उत्तम मानसिक तथा आत्मिक सतह से अनजान या जान बूझ कर लापरवाह रहते हैं ।**

किआ तू रता देखि कै पुत्र कलत्र सीगार ।।
रस भोगहि खुसीआ करहि माणहि रंग अपार ।। (पृ ४२)

ग्रिसति कुटंबि पलेटिआ कदे हरखु कदे सोगु ।। (पृ ७०)

पुत्रि कलत्रि मोहि लपटिआ वणजारिआ मित्रा अंतरि लहरि लोभानु ।।
(पृ ७७)

लोभि मोहि अभिमानि बूडे मरणु चीति न आवए ।।
पुत्र मित्र बिउहार बनिता एह करत बिहावए ।। (पृ ७०५)

पुत्र कलत्र ग्रिह देखि समग्री इस ही महि उरझाइओ ।। (पृ १०१७)

मात पिता भाई सुतु बनिता ।।
चूगहि चोग अनंद सिउ जुगता ।।
उरझि परिओ मन मीठ मोहारा ।। (पृ १३४७)

यह ऊपरी सा 'मेल-मिलाप' अथवा 'संग' केवल **शरीरों के मेल तक सीमित होता है,** जो शारीरिक व मायिकी सतह पर **'मैं-मेरी'** तथा **'स्वार्थ' पर आधारित होता है ।**

ऐसे **'अहम्मयी' बे-सुर 'मेल-मिलाप' में 'स्वार्थ' का होना अनिर्वाय है** जिस कारण हमारे हृदयों में शक, जलन, द्वेष, गलत फहमी, भ्रम, वाद-विवाद, वैर-विरोध, टकराव, झगड़े, लड़ाईयों का **व्यवहार अनिवार्य है। इस के परिणाम स्वरूप संसार में अज्ञानता तथा भ्रम-भुलाव के अंध गुब्बार की खिचड़ी पकी हुई है।**

संसार के बहुत से जीव इसी **मायिकी 'अंधेर-खाते'** के **भ्रम-भुलाव में नाममात्र 'मेल-मिलाप'** अथवा **'संग' करते हैं** तथा पशुओं की भाँति **'काम चलाऊ'** जीवन व्यतीत करके आवागमन के चक्र में विचरण करते हैं तथा **इसमें ही सन्तुष्ट व मस्त हैं।**

गुरबाणी में ऐसे नाममात्र मेल-मिलाप को यूँ दर्शाया गया है —

जगत मै झूठी देखी प्रीति ॥
अपने ही सुख सिउ सभ लागे किआ दारा किआ मीत ॥ (पृ ५३६)

अपने सुख सिउ ही जगु फांधिओ को काहू को नाही ॥ रहाउ ॥
सुख मै आनि बहुतु मिलि बैठत रहत चहू दिसि घेरै ॥
बिपति परी सभ ही संगु छाडित कोऊ न आवत नेरै ॥ (पृ ६३४)

इह जगि मीतु न देखिओ कोई ॥
सगल जगतु अपनै सुखि लागिओ दुख मै संगि न होई ॥ (पृ ६३३)

धन पिरु एहि न आखीअनि बहनि इकठे होइ ॥ (पृ ७८८)

मिलिऐ मिलिआ ना मिलै मिलै मिलिआ जे होइ ॥
अंतर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीऐ सोइ ॥ (पृ ७९१)

इसतरी पुरखै बहु प्रीति मिलि मोहु वधाइआ ॥
पुत्रु कलत्रु नित वेखै विगसै मोहि माइआ ॥
देसि परदेसि धनु चोराइ आणि मुहि पाइआ ॥
अंति होवै वैर विरोधु को सकै न छडाइआ ॥ (पृ १२४९-५०)

कपट सनेहि न दरगाह ढोई। (वा. भा. गु १७/८)

२ मानसिक संगति —

जीवन के निजी अनुभवों द्वारा रूहों की मानसिक उन्नति तथा विकास (evolution) होता है।

प्रत्येक जीव के पूर्व संस्कारों तथा इस जन्म के अनुभवों के मिश्रित परिणाम स्वरूप **'मानसिक सतह'** (mental plane) **बनती तथा बदलती रहती है । यह 'मानसिक सतह' प्रत्येक जीव की अलग-अलग होती है जिस कारण हमारे बीच 'मतभेद' होने अनिवार्य हैं ।**

परन्तु जब कभी **विकसित हुई** दो रूहों की किसी एक नुक्ते (single point) पर सहमति हो जाये, तब उन दोनों रूहों का सही रूप में **मानसिक 'मेल-मिलाप' अथवा 'संगति'** होती है । वे किसी विशेष नुक्ते पर 'एक-सुर' (in tune) **होती हैं । 'संगति' द्वारा** इन दोनों रूहों में परस्पर **सत्कार, आकर्षण, प्यार उत्पन्न होता है** तथा वे **उस 'एक-सुर' नुक्ते की कोमल ख्यालों की उड़ान भर कर खुशी, चाव तथा मानसिक उल्लास अनुभव करती हैं ।**

उदाहरण के रूप में दो **'शराबी'** जब आपस में मिलते हैं, तब वे **नशे में एक ही सतह पर होते हैं** तथा **'नशे' की हालत में 'एक-सुर' होकर सही अर्थ में** मानसिक मेल-मिलाप, संग, आदान-प्रदान करते हैं तथा **अपनी नशयी हालत में जिगरी** सांझ, सुख, चाव, आनन्द, स्वाद, बेखुदी, मस्ती की **साँझ करते हैं तथा रंग अनुभव करते हैं ।**

इसी प्रकार चोर, ठग, कामी, निंदक, विद्वान, फिलास्फर आदि मायाधारी रूहें जब भी किसी **एक नुक्ते पर 'एक सुर'** (in tune) **होती हैं,** तब वे भी **अपनी-अपनी श्रेणी के मेल या 'संग' द्वारा परस्पर आदान-प्रदान करते हैं** तथा **'मानसिक रंगत'** की साझेदारी, तसल्ली, स्वाद, खुशी अनुभव करते हैं ।

विचि सचे कूड़ु न गडई मनि वेखहु को निरजासि ॥
कूड़िआर कूड़िआरी जाइ रले सचिआर सिख बैठे सतिगुर पासि ॥ (पृ. ३१४)

अमली रचनि अमलीआ सोफी सोफी मेलु करंदे ।
जूआरी जूआरीआ वेकरमी वेकरम रचंदे ।
चोरा चोरा पिरहड़ी ठग ठग मिलि देस ठगंदे ।
मसकरिआ मिलि मसकरे चुगला चुगल उमाहि मिलंदे ।
मनतारू मनतारूओं तारू तारू तार तरंदे ।
दुरिवआरे दुरिवआरिआं मिलि मिलि आपणे दुख रुवंदे । (वा. भा. गु ५/४)

अमली अमलु न छडनी हुइ बहिन इकठे ।
जिउ जूए जुआरीआ लगि दाव उपठे ।
चोरी चोर न पलरहि दुख सहिन गरठे ।

रहनि न गणिका वाड़िअहु वेकरमी लठे ।
पापी पापु कमावदे होइ फिरदे नठे । (वा. भा. गु २७/२)

संसार में **तीव्र 'प्रेम-कहानियाँ'** 'हीर-राँझा', 'सोहनी महिवाल', 'सॅसी-पुनुं' आदि भी, **इश्क की किसी विशेष भावुक सतह** (emotional love) **पर 'मेल' या 'संगति' का ही प्रतीक तथा प्रकटाव हैं ।**

लेंलै मजनूं आसकी चहु चकी जाती ।
सोरठि बीजा गावीऐ जसु सुघड़ा वाती ।
ससी पुंनुं दोसती हुइ जाति अजाती ।
मेहीवाल नो सोहणी नै तरदी राती ।
रांझा हीर वखाणीऐ ओहु पिरम पराती । (वा. भा. गु २७/१)

यहाँ जरूरी तथा महत्वपूर्ण नुक्ता, किसी विशेष नुक्ते पर जीवों का 'मेल या संगति' होनी (communion at the same wave-length) **अथवा मानसिक रूप से 'एक-सुर' होना ही है ।**

दूसरे शब्दों में किसी **विशेष नुक्ते पर 'एक सुर' होना ही मानसिक 'मेल' या 'संगति' करना** कहा जा सकता है तथा इस **सांझे नुक्ते द्वारा ही जिगरी मेल-मिलाप, साझेदारी, आदान-प्रदान, लाभ,** खुशी, चाव, प्रीत, प्रेम-प्यार हो सकता है । परन्तु ऐसा 'एक-सुर'—

जिगरी मेल
साझेदारी
संगति
प्यार
आर्कषण

किन्हीं विकसित हुई 'विरली' रूहों में ही परस्पर हो सकता है ।

बाकी सारी दुनिया **'बेसुर' हो कर 'गले पड़ा ढोल' ही बजाती रहती है ।** जिसके परिणाम स्वरूप विश्व में गलत फहमियाँ, शक, जलन, ईर्ष्या, नफरत, वैर, विरोध, पक्षपात, वाद-विवाद, खींचतान, टकराव, झगड़े, लड़ाईयाँ, खून-खराबे तथा अत्याचार का बोलबाला तथा व्यवहार है ।

३ **व्यक्तित्व की संगति —**

प्रत्येक 'ख्याल' विचार तथा कर्म हमारे मन पर हल्की सी 'रंगत' चढ़ा देता है

यदि यह विचार या कर्म **बार-बार दुहराये जायें, तब यह 'रंगत' गाढ़ी होती जाती है** । यदि इन ख्यालों या कर्मों का **नित्यप्रति अभ्यास किया जाये,** तब इनकी 'रंगत' हमारे मन पर **अंकित हो जाती है** । इसी प्रकार यदि एक ही ख्याल या कर्म कुछ समय तक लगातार किये जाये, तो इन की **'रंगत' हमारे हृदय में गहरी उतरती जाती है** । इस प्रकार काफी समय उपरान्त यह 'रंगत' **हमारे चित्त की गहरी तहों में घँसती तथा बसती** (percolate) **जाती है ।**

इसी प्रकार **एक ही विशेष ख्याल** या कर्म के लगातार अभ्यास द्वारा उस की 'रंगत' हमारे मन, चित्त, **बुद्धि — अन्तःकरण में 'धँस' 'बस','रसरूप'** हो कर 'समा' (permeate) जाती है तथा हमारे **जीवन का 'अभिन्न अंग' बन जाती है** । इस 'रंगत' का **'अक्स' या 'झलक'** हमारे **जीवन के प्रत्येक पक्ष,** ख्याल, सोच, दृष्टि, वचन, व्यवहार, प्यार, घृणा, कर्म-धर्म में **सहज स्वभाव अनजाने ही प्रकट होती रहती है ।**

हमारे **'मेल-मिलाप' अथवा 'संगति'** अनुसार हमारे मन की 'रंगत' **अच्छी या बुरी बनती तथा दृढ़ होती है ।**

समयोपरान्त जब यह रंगत हमारे अन्तः करण में धँस, बस, समा जाये, तो हमारा जीवन **इसी 'रंगत' का 'स्वरूप' बन जाता है ।** लगातार अभ्यास द्वारा स्वंय रचे ऐसे **मानसिक 'स्वरूप'** को ही —

'आंदतें'

'स्वभाव'

'आचरण'

'व्यक्तित्व'

'जीवन'

कहा जाता है ।

प्रत्येक जीव ने अपने ख्यालों तथा कर्मों अनुसार **लगातार अभ्यास द्वारा अपना 'व्यक्तित्व' बनाया हुआ है ।** यह 'व्यक्तित्व', स्वभाव, आदतें लम्बे समय के **अभ्यास द्वारा** बनती तथा दृढ़ होती हैं ।

यह स्वभाव तथा आदतें सहज-स्वभाव **बेध्यान ही बन रही हैं,** जिसका हमें **पता भी नहीं होता ।** परन्तु समयोंपरांत इन की सामूहिक **'रंगत' ही हमारा 'आचरण' तथा 'व्यक्तित्व' बन जाता है ।**

'जीव' इस स्वयं रचे हुए 'व्यक्तित्व' की आदतों तथा स्वभाव की **शक्तिशाली 'जंजीरों' में जकड़े जाते हैं** तथा सारी उम्र के लिए इसके **'बैखरीद गुलाम' बन जाते हैं ।**

बाधिओ आपन हउ हउ बंधा ।।
दोसु देत आगह कउ अंधा ।। (पृ २५८)

फासन की बिधि सभु कोऊ जानै छूटन की इकु कोई ।। (पृ ३३१)

आसा मनसा बंधनी भाई करम धरम बंधकारी ।। (पृ ६३५)

फिरि फिरि फाही फासै कऊआ ।। (पृ ९३५)

रसि रसि चोग चुगहि नित फासहि छूटसि मूड़े कवन गुणी । (पृ ९८०)

धंधै धावत जगु बाधिआ ना बूझै वीचारु ।। (पृ १०१०)

अनिक करम कीए बहुतेरे ।।
जो कीजै सो बंधनु पैरे ।। (पृ १०७५)

यदि 'सत्संग' द्वारा हमारे मन को **समझ भी आ जाये** कि हमारी आदतें, स्वभाव, आचरण, व्यक्तित्व गलत तथा हानिकारक है, तब भी यह स्वयं रची हुई आदतों तथा स्वभाव की जंजीरे **टूट नहीं सकती ।**

'जीव' की मृत्यु के उपरान्त सभी मायिकी पदार्थ तो यहीं रह जाते हैं — परन्तु यह **स्वंय रचित अच्छा या बुरा 'व्यक्तित्व' अगले जन्मों में भी साथ ही जाता है ।**

इस जरूरी तथा महत्वपूर्ण नुक्ते का हमें कभी ख्याल या अहसास भी नहीं होता तथा हम **पुराने अन्तः करण की 'रंगत' अनुसार बे-परवाह, बे खबर तथा लापरवाह होकर अनजाने ही अपना जीवन व्यर्थ गंवा रहे हैं तथा दुख क्लेश में नरक भोग रहे हैं ।**

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ १३३)

मेरी मेरी धारि बंधनि बंधिआ ।।
नरकि सुरगि अवतार माइआ धंधिआ ।। (पृ ७६१)

जनमु बिथा जात रंगि माइआ कै ।। (पृ ३७८)

मन के अधिक तंरग किउ दरि साहिब छुटीऐ ।। (पृ १०८८)

जंमणु मरणु न चुकई रंगु लगा दूजै भाइ ।।
बंधनि बंधि भवाईअनु करणा कछू न जाइ ।। (पृ. १४१४)

उदाहरण के रूप में, शुरु में जीव किसी शराबी की 'संगति' करने से शराब पीने लगता है, धीरे-धीरे वह पक्का 'शराबी' बन जाता है तथा शराब के सारे अवगुणों का प्रभाव उस के मन, तन, चित्त तथा बुद्धि पर पड़ता है । इस प्रकार उस के स्वभाव, आचरण या **'व्यक्तित्व' को शराब की 'रंगत' चढ़ जाती है** तथा वह **शराब का ही 'जीवन-स्वरूप' बन जाता है ।** यह 'शराब' के अवगुणों वाली 'रंगत', जीव के अन्तः करण द्वारा अगले जन्मों में भी **साथ जाती है** तथा अगले जन्म में भी उसकी **'रुचि'** शराब की ओर सहज ही आकर्षित हो जाती है । इस प्रकार जीव की अगले जन्म में भी **'शराबी रंगत' वाले व्यक्तित्व की बुनियाद बन जाती है ।**

एक अन्य उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है –

आजकल एक नवीन यन्त्र बना है, जिसे कम्प्यूटर (computer) कहा जाता है । इस यन्त्र में जो आँकड़े (data) डाले जाते हैं, उनका परिणाम तत्काल निकलता जाता है, तथा अन्त में पूरे प्रश्न का उत्तर या परिणाम प्रकट हो जाता है ।

इसी प्रकार हमारा 'चित्त' भी **अत्यन्त सूक्ष्म, त्रुटिरहित मानसिक 'कम्प्यूटर' है** – जिस में जो भी ख्याल, मनोभाव, वाशना आदि उत्पन्न होते हैं या गुजरते हैं, उनका **सामूहिक परिणाम या रंगत हमारे चित्त के पर्दे** (film) **पर अंकित हो जाती है।** यदि उन विशेष ख्यालों या वाशनाओं का **बार-बार अभ्यास किया जाये, तब इनकी 'रंगत' गहरी व गाढ़ी होती जाती है ।**

इस प्रकार हमारे 'चित्त' में **लगातार एकत्रित की हुई 'रंगत' को ही 'किस्मत','भाग्य' या 'लेख'** कहा जाता है । धीरे-धीरे स्वयं रचे हुए 'लेख' या 'भाग्य' द्वारा 'कर्म-बद्ध' हो कर उसी रंगत के ख्यालों, वाशनाओं अनुसार कर्म करते रहते हैं तथा उनका परिणाम भोगते रहते हैं ।

दिनु राति कमाइअड़ो सो आइओ माथै ।। (पृ. ४६१)

मसतकि लिखिअड़ा लेखु पुरबि कमाइआ जीउ ।।
लेखु न मिटई पूरबि कमाइआ किआ जाणा किआ होसी ।। (पृ ६८९)

पूरब करमि लिखत धुरि पाई ।। (पृ ७४३)

लेखा लिखीऐ मन कै भाइ ।। (पृ १२३७)

बाहर से चाहे हम अपने आन्तरिक रव्यालों, वाशनाओं या **निजी 'व्यक्तित्व'** को कितना ही छुपाने की कोशिश करें, परन्तु इन की **भड़ास या 'रंगत' हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष में सहज स्वभाव अनजाने ही प्रकट होती रहती है ।**

इस प्रकार हमारा आन्तरिक मन, चित्त, अन्तः करण ही हमारा अन्तर्गत सूक्ष्म मानसिक कम्प्यूटर है जो त्रूटिरहित तथा सम्पूर्ण है । जिस के परिणाम स्वरूप अवश्य ही हमारा जीवन सहज स्वभाव बनता तथा बदलता रहता है ।

जो पावहि भांडे विचि वसतु सा निकलै किआ कोई करे वेचारा ।।

(पृ ४४९-५०)

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ ।।
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना ।। (पृ ४३३)
जेहा बीजै सो लुणै करमां संदड़ा खेतु ।। (पृ १३४)

जब किसी रव्याल या कर्म का लगातार अभ्यास (regular practice) किया जाये, तब उस की अच्छी या बुरी **'रंगत' का प्रभाव,** मन में गहरा उतरता जाता है तथा यह **'रंगत' या 'व्यक्तित्व' अत्यन्त शक्तिमान होता जाता है ।**

ऐसे **शक्तिमान तथा बलवान मानसिक मायिकी 'व्यक्तित्व'** का दूसरी भोली-भाली निर्बल रूहों पर **अत्यन्त खतरनाक तथा हानिकारक प्रभाव पड़ता है — जैसे कि**

नजर लगनी
जादू
टोने
करामात
भूतों के डर
जंत्र
मंत्र
तंत्र
हिप्नोटिस्म (hypnotism)
मैस्मरिज्म (mesmerism) आदि ।

जब ऐसी **मलिन रुचि वाले 'व्यक्तित्व' के 'मेल' या 'संग' करने के इतने खतरनाक तथा हानिकारक परिणाम निकल सकते हैं,** तब दैवीय आत्मिक व्यक्तित्व अथवा गुरमुख, साधू, संत, हरि जनों की **उच्च पवित्र 'संगति' द्वारा बेअन्त आत्मिक 'लाभ' भी प्राप्त हो सकता है ।** परन्तु आश्चर्य की बात है कि इतने मानसिक, विद्यक तथा वैज्ञानिक **विकास के बावजूद इन्सान अथवा समस्त संसार फोकट, हानिकारक कर्म-काण्डों में जकड़ा हुआ है तथा इसी में सन्तुष्ट तथा मस्त है ।**

'व्यक्तित्व' का बीज, मूल कारण, बनावट, रंगत, दृढ़ता, स्वरूप या जीवन अच्छे या बुरे 'मेल-मिलाप', संग अथवा 'संगति' पर निर्भर है । इस लिए इस 'मेल-मिलाप' अथवा 'संगति' का **निर्णय** करने की अति आवश्यकता है । इस 'निर्णय शक्ति' अथवा 'विवेक बुद्धि' के बिना जीव 'तुच्छ संगति' अथवा **कुसंगति की ओर सहज ही आकर्षित तथा प्रेरित हो जाता है तथा धीरे-धीरे इसी गलत, मलिन तथा हानिकारक 'प्रवाह' में बहता जाता है ।**

जन्म-जन्म से दृढ़ की हुई **अन्तः करण की रंगत** के कारण हमारी समझ, सूझ-बूझ, निश्चय, ज्ञान, निर्णय शक्ति भी धुंधली, गँदली, एक तरफी, भेद-भावपूर्ण, अपूर्ण, गलत हो जाती है ।

इसी कारण धर्मों अथवा मजहबों के बीच भेद-भाव, वाद-विवाद, तअस्सुब, नफरत, वैर-विरोध, झगड़े, लड़ाइयाँ होते रहते है ।

तुच्छ, मलिन, मायिकी, मनमुखी 'व्यक्तित्व' को हम अपनी **निजी कोशिशों से नहीं 'बदल' सकते,** क्योंकि हमारे जीवन का प्रत्येक पक्ष **मलिन मायिकी रंगत से 'लथ-पथ' हो चुका है,** जिस कारण हमारी —

सोच
ख्याल
निश्चय
श्रद्धा
विश्वास
भय-भावना
मनोभाव
पाठ
पूजा

कर्म

धर्म

जिज्ञासा

पर हमारे अपने रचे हुए 'व्यक्तित्व' की 'रंगत' का 'ठप्पा' लगा होता है तथा इस **अहम्मय 'रंगत' के भ्रम-भुलाव में जो भी कर्म क्रिया तथा 'धर्म' आदि करते है, सब फोकट, रसहीन तथा 'कूड़ क्रिया' ही होते हैं ।**

हउ हउ करते करम रत ता को भारु अफार ।।
प्रीति नही जउ नाम सिउ तउ एऊ करम बिकार ।। (पृ २५२)

हउ विचि दिता हउ विचि लइआ ।।
हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ ।।
हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ।।
हउ विचि पाप पुंन वीचारु ।। (पृ ४६६)

धरणीधरु तिआगि नीच कुल सेवहि हउ हउ करत बिहावथ ।।
फोकट करम करहि अगिआनी मनमुखि अंध कहावथ ।। (पृ १००१)

जो जो करम कीए हउ हउमै ते ते भए अजाए ।। (पृ ९९९)

कहै प्रभु अवरु अवरु किछु कीजै
सभु बादि सीगारु फोकट फोकटईआ ।। (पृ ८३६)

मनमुखि हुकमु न बुझे बपुड़ी नित हउमै करम कमाइ ।।
वरत नेमु सुच संजमु पूजा पाखंडि भरमु न जाइ ।।
अंतरहु कुसुधु माइआ मोहि बेधे जिउ हसती छारु उडाए ।। (पृ १४२३)

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु ।।
नानक निहफल जात तिह जिउ कुंचर इसनानु ।। (पृ १४२८)

हउमै अंदरि कारि विकारे । (वा. भा. गु १२/८)

जिस प्रकार पहले बताया जा चुका है कि हमारे —

पाठ-पूजा
कर्म-क्रिया

जप-तप
ज्ञान-ध्यान
जिज्ञासा

आदि, सब **मन की उपरी तह के ही कर्म हैं, जो हमारे मन, चित्त, अन्तः करण की गहरी तह तक नहीं उतरते ।**

यही कारण है कि अनगिनत धर्मों, धार्मिक सम्प्रदायों, धार्मिक ग्रन्थों, धार्मिक स्थानों, धार्मिक प्रचार, धार्मिक समागम, पाठ, पूजा, कथा वार्ता, जगराते, मन्नतें, तीर्थ यात्रा, व्रत, नेम, स्नान, कर्म-काण्ड, योग साधनाओं, समाधिओं की **इतनी बहुलता में प्रचलित होने के बावजूद भी इन्सान का मानसिक तथा आत्मिक 'जीवन' उन्नति करने की जगह, गिरता जा रहा है,** जिस कारण जनता के हृदय में **'ईश्वर के अस्तित्व' के विषय में 'शंका' पैदा हो रही हैं तथा लोग धर्म से श्रद्धाहीन, लापरवाह तथा 'विमुख' हो रहे हैं ।**

ऐसे अहम्मय धार्मिक फोकट कर्म-काण्डों को गुरबाणी में यूँ दर्शया गया है —

बरत नेम संजम महि रहता तिन का आढु न पाइआ ।।
आगै चलणु अउरु है भाई ऊहा कामि न आइआ ।।
तीरथि नाइ अरु धरनी भ्रमता आगै ठउर न पावै ।।
ऊहा कामि न आवै इह बिधि ओहु लोगन ही पतीआवै ।। (पृ. २१६)

खटु सासत बिचरत मुखि गिआना ।।
पूजा तिलकु तीरथ इसनाना ।।
निवली करम आसन चउरासीह इन महि सांति न आवै जीउ ।।
अनिक बरख कीए जप तापा ।।
गवनु कीआ धरती भरमाता ।।
इकु खिनु हिरदै सांति न आवै जोगी बहुड़ि बहुड़ि उठि धावै जीउ ।।

(पृ ९८)

किरिआचार करहि खटु करमा इतु राते संसारी ।।
अंतरि मैलु न उतरै हउमै बिन गुर बाजी हारी ।। (पृ. ४९५)

हठु निग्रहु करि काइआ छीजै ।।
वरतु तपनु करि मनु नही भीजै ।। (पृ ९०५)

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे ।।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अंहबुधि बांधे ।। .....
पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता ।।
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नही मिलीऐ इह जुगता ।।
जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ ।।
वडी आरजा फिरि फिरि जनमै हरि सिउ संगु न गहिआ ।। (पृ ६४१-६४२)

जिस प्रकार पानी अपने आप सहज स्वभाव नीचे ढलान की ओर बहता जाता है – परन्तु पानी को **उपर की ओर चढ़ाने के लिए** किसी **शक्तिशाली यन्त्र** अथवा पम्प की आवश्यकता पड़ती है ।

इससे स्पष्ट है कि हमारी स्वयं रची हुई **तुच्छ 'शख्सीयत' को बदलने या ऊपर की ओर अथवा आत्मिक मंडल की ओर उठाने के लिए, किसी दामनिक आत्मिक शक्ति वाले 'व्यक्तित्व' की संगति अथवा —**

साधू
संतों
भक्तों
हरिजनों
गुरमुखों

की लगातार संगति की अति आवश्यकता है ।

इसी लिए गुरबाणी में हमें गुरप्रसादि द्वारा बख्शे हुए गुरमुख प्यारों की **'संगति' करने की ताकीद भरी प्रेरणा की गयी है** तथा ऐसी उच्च पवित्र आत्मिक संगति के लिए याचना करनी सिखायी गयी है ।

सेई पिआरे मेल जिनां मिलिआं तेरा नाम चित आवै । (अरदास)

मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ।। (पृ १२)

सो साजनु सो सरवा मीतु जो हरि की मति देइ ।। (पृ २९८)

ओइ साजन ओइ मीत पिआरे ।।
जो हम कउ हरि नामु चितारे ।। (पृ ७३९)

आवहु संत मिलहु मेरे भाई मिलि हरि हरि कथा करहु ।।
हरि हरि नामु बोहिथु है कलजुगि खेवटु गुर सबदि तरहु ।। (पृ. ७९९)

नीच ते नीचु अति नीचु होइ करि बिनउ बुलावउ ।।
पाव मलोवा आपु तिआगि संतसंगि समावउ ।। (पृ. ८१२)

ऐसी किरपा मोहि करहु ।।
संतह चरण हमारो माथा नैन दरसु तनि धूरि परहु ।। (पृ. ८२८)

होहु क्रिपाल सुआमी मेरे संतां संगि विहावे ।। (पृ. ९६१)

साध संगति निहचउ है तरणा ।। (पृ. १०७१)

ऐसी मांगु गोबिद ते ।।
टहल संतन की संगु साधू का हरि नामां जपि परम गते ।। (पृ. १२९८)

कोई आवै संतो हरि का जनु संतो
मेरा प्रीतम जनु संतो मोहि मारगु दिखलावै ।। (पृ. १२०१)

यदि मात्र एक व्यक्तित्व का प्रभाव इतना **तीक्ष्ण तथा बलवान** होता है, तब **बहुत से व्यक्तियों के समूह की 'संगति' का सम्पूर्ण प्रभाव तो अति गहरा, तीव्र तथा दामनिक हो सकता है ।** इसी लिए गुरबाणी में गुरमुख प्यारों की संगति को **बहु वचन के रूप में भी प्रयोग किया गया है,** जैसे कि —

साधा सरणी जो पवै सो छुटै बधा ।। (पृ. ३२०)

साध सभा संता की संगति नदरि प्रभू सुखु पाइआ ।। (पृ. ४३७)

संत जना मिलि हरि जसु गाइओ ।। (पृ. ७२०)

मिलि रहीऐ प्रभ साध जना मिलि हरि कीरतनु सुनीऐ राम ।। (पृ. ९२६)

राम नामु गुर बचनी बोलहु ।।
संत सभा महि इहु रसु टोलहु ।। (पृ. १०३०)

संत मंडल महि हरि मनि वसै ।।
संत मंडल महि दुरतु सभु नसै ।।
संत मंडल महि निरमल रीति ।।
संतसंगि होइ एक परीति ।। (पृ. ११४६)

साधन का संगु साध सिउ गोसटि हरि साधन सिउ लिव लाउ ।। (पृ १२०२)

मेरा मनु साध जनां मिलि हरिआ ।।
हउ बलि बलि बलि बलि साध जनां कउ
मिलि संगति पारि उतरिआ ।। (पृ १२९४)

संत सभा जैकारु करि गुरमुखि करम कमाउ ।। (पृ. १४११)

ऐसी उच्च, पवित्र-पावन आत्मिक 'संगति' को ही गुरबाणी में सतसंगति, संत संगति, साध संगति, गुर संगति, संत मंडल, सच संगत, सची संगति, संत सभा, साध सभा, गुर सभा, राम जना, संत जना, संत सजज्न परिवार, ठाकुर वजीरा, महापुरखन या हरि के लोग आदि शब्दों द्वारा सम्मानित किया गया है ।

मुकति बैकुंठ साध की संगति जन पाइओ हरि का धाम ।।
(पृ ६८२)

(क्रमशः.....)